जैसे चाहो, वैसे बन जाओ!

(जेम्स एलेन की प्रसिद्ध पुस्तक As a man Thinketh का स्वतंत्र अनुवाद)

यादृगिच्छेच्च भवितुं
तादृग्भवति पूरुषः ॥
—महाभारत

*मनुष्य जैसा बनना चाहता है,
वैसा ही बन जाता है।*

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
1957 ई

क्रम

१. जैसे चाहो, वैसे बन जाओ ... ५
२. परिस्थितियों पर विचारों का प्रभाव ... ११
३. जैसा मन, वैसा तन ... ३३
४. विचार और लक्ष्य ... ३६
५. सफलता और विचार ... ४५
६. स्वप्न और सत्य ... ५२
७. शान्ति ... ६०

१. जैसे चाहो, वैसे बन जाओ!

वास्तव में आदमी का मन ही सब कुछ है। आदमी मन में जैसा विचार करता है, जैसी इच्छाएँ उसके मन में पैदा होती हैं, वैसा ही वह स्वयं हो जाता है।

अमुक आदमी कैसा है ? उसकी परिस्थितियाँ कैसी हैं ? उसका स्वभाव कैसा है—कठोर या कोमल ? वह सुखी है या दुखी ? इन सब प्रश्नों का उत्तर उसके मन और विचारों से मिल सकता है। विचारों के संगठित रूप को ही चरित्र या आचरण कहते हैं।

विचारों की शक्ति विलक्षण है। आदमी चाहे तो अपने विचारों द्वारा स्वर्ग को नरक और नरक को स्वंग बना सकता है। वह दुःख के दिनों में भी सुख का अनुभव कर सकता है; और सुखों का भोग करता हुआ भी दुखी हो सकता है।

सुख और दुःख मन की स्थिति-विशेष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह किसी बाहरी वस्तु के होने या न होने पर निर्भर नहीं करता।

हम प्रतिदिन देखते हैं कि वे लोग भी, जिनके पास रुपया-पैसा, स्त्री-पुत्र और अधिकार तथा मान सब कुछ है, अपने को दुखी बताते हैं; और ऐसे भी हैं, जिनके पास कल के लिए दो रोटियाँ भी नहीं हैं लेकिन वे रात को गहरी मीठी नींद सोते हैं।

यह सब मन का प्रभाव है। मन बड़ा शक्तिशाली है। आदमी के मन में जैसे विचार पैदा होते हैं, उनके अनुसार ही उसके काम होते हैं।

जैसे बीज से वृक्ष पैदा होता है, उसी प्रकार प्रत्येक काम, विचार-रूपी बीज से उत्पन्न होता है।

गोसाईं तुलसीदासजी के शब्दों में—

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप-पुण्य दोऊ बीज हैं, बवै सो लुनै निदान।।

शरीर खेत है। मन किसान है। पाप और पुण्य बीज हैं। जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। आदमी का विकास प्रकृति के नियमों द्वारा होता है। बाहरी जगत में जैसे कारण और कार्य का सम्बन्ध अटूट है, वैसे ही विचार-जगत में भी यह

नियम लागू होता है। यदि कोई व्यक्ति पवित्र चरित्र वाला है, तो यह किसी अदृश्य शक्ति की कृपा या संयोग की बात नहीं है; न भाग्य के कारण ही ऐसा होता है। किन्तु अपने मन में सदा सद्-विचारों को स्थान देने और शुभ संकल्प करने का परिणाम है। इसके विपरीत, जो आदमी सदा नीचता से पूर्ण विचारों को मन में स्थान देता है, वह स्वयं भी नीचे गिरता है और उसमें मानवता की जगह पशुता ले लेती है।

मनुष्य स्वयं अपने को बनाता या बिगाड़ता है। अपने आप को बाँधता है या छुड़ाता है। (गीता)

यह मन ही मित्र भी है और शत्रु भी। (गीता)

कुएं से शीतल निर्मल जल भी पिया जा सकता है और उसमें छलाँग लगाकर आत्म-हत्या भी की जा सकती है। सुविचारों के उचित चुनाव और ठीक प्रयोग द्वारा वह मानव से देवता बन सकता है और कुविचारों द्वारा मानव से दानव भी। इन्हीं दो रेखाओं के बीच चरित्र की सभी श्रेणियाँ पायी जाती हैं और इन सबको बनाने वाला और इनका मालिक आदमी ही तो है!

आत्मा के सम्बन्ध में अब तक जितनी महत्वपूर्ण

बातें मालूम हुई हैं, उन सबमें अधिकाधिक प्रसन्नता प्रदान करने वाली बात यह है कि मनुष्य अपने विचारों का स्वामी, चरित्र का निर्माता, परिस्थितियों और भाग्य का बनाने वाला है।

मनुष्य शक्ति का स्रोत, बुद्धि का भण्डार और प्रेम का पुतला है। वह अपने विचारों का स्वामी है। अतः उसके पास प्रत्येक परिस्थिति की ऐसी कुञ्जी और आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने वाली एक ऐसी शक्ति विद्यमान है, जिसके कारण वह जो चाहे, प्राप्त कर सकता है और जैसा चाहे, बन सकता है।

गिरी से गिरी हालत में भी, मनुष्य अपना मालिक खुद है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस दशा में वह घर के एक अयोग्य और नासमझ मालिक जैसा है, जो अपनी घर-गृहस्थी का ठीक प्रबन्ध नहीं कर पाता और घर की हालत बिगड़ जाती है। किन्तु वही आदमी जब अपनी बिगड़ी स्थिति पर विचार करता है, अपनी भूलों को समझता है, आत्म-निरीक्षण करता है, तो वह उस समझदार मालिक की तरह बन जाता है, जो अपनी शक्ति का उपयोग पूरी समझदारी से करता है और अपने विचारों और आचारण को सुधारता है। जब वह सारी भूलों

के लिए किसी दूसरे को ज़िम्मेदार नहीं मानता और अपने को ही उनका दोषी मानता है। विचार, कार्य और उसके परिणाम में जो सम्बन्ध है, वह उसे समझ लेता है और एक समझदार मालिक बन जाता है। किन्तु इस सबके लिए गम्भीर विचार, गहरी लगन और लगातार आत्म-निरीक्षण और अनुभवजन्य ज्ञान आवश्यक है।

जैसे बहुत खोज और खोदने के बाद खान से बहुमूल्य धातुएँ——सोना, हीरे-जवाहरात——प्राप्त होती हैं, वैसे ही मनुष्य भी आत्मा रूपी खान में गहरा उतरने पर ही अपनी आत्म-शक्ति के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है।

यदि मनुष्य अपने विचारों पर काबू पा ले और उनमें आवश्यक परिवर्तन करता रहे और साथ ही यह भी देखता रहे कि उन विचारों का स्वयं उस पर क्या प्रभाव पड़ा है ; उसके सम्पर्क में आने वाले दूसरे लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा है, परिस्थितियों पर कितना प्रभाव पड़ा है और घटनाओं को अपनी इच्छानुसार बदलने में कितनी सफलता मिली है, तो उसे कारण और कार्य का सम्बन्ध भली प्रकार मालूम हो जायेगा। प्रतिदिन के जीवन की साधारण-

साधारण घटनाओं के अनुभव से भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करे, तो उसे यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायेगी कि मनुष्य स्वयं ही अपना––अपने भाग्य और परिस्थितियों का––बनानेवाला है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' वाली बात अक्षरशः सत्य है।

जो तलाश करेगा, वह पायेगा। जो खटखटायेगा, उसके लिए दरवाज़ा खुलेगा। निरन्तर परिश्रम, धैर्य और अभ्यास के द्वारा ही मनुष्य ज्ञान-मन्दिर में प्रविष्ट हो सकता है।

२. परिस्थितियों पर विचारों का प्रभाव

मनुष्य का मन एक बाग की तरह है। वह चाहे तो उसमें अच्छे-अच्छे फल-फूल लगा ले और चाहे तो यों ही बिना जोते-बोए पड़ा रहने दे। पर एक बात तो निश्चित ही है कि अगर उसमें काम की चीजें न बोयी गईं तो भी घास-फूस, झाड़-झंखाड़ तो अपने आप उगेंगे और बढ़ेंगे ही।

जिस प्रकार समझदार माली क्यारियों की गुड़ाई और निराई करता है, बेकार के घास-फूस को उखाड़ फेंकता है और काम की चीजें—अच्छे-अच्छे फल-फूल —उगाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने मन-रूपी बाग में से बुरे विचारों के घास-फूस को निकालकर भले विचारों के फल-फूल उगा सकता है।

इस नियम को समझ लेने से देर-सवेर में मनुष्य अपने मन-रूपी बाग का चतुर माली और मालिक बन

सकता है। उसे अपने भीतर की—मन की—शक्ति का नियम मालूम हो जायेगा और वह इस बात को भली प्रकार समझने लगेगा कि विचारों की शक्ति और पवित्र मन का प्रभाव चरित्र, परिस्थितियों और भाग्य का निर्माण करते हैं। दूसरे शब्दों में, हम यों कह सकते हैं कि मनुष्य का आचरण, परिस्थितियाँ और भाग्य, सब कुछ उसके विचारों का परिणाम है। क्योंकि जैसे मनुष्य के विचार होते हैं, वैसा ही उसका आचरण होता है; और जैसा आचरण, वैसा भाग्य।

वास्तव में विचार और चरित्र एक ही वस्तु है। जैसे चरित्र परिस्थिति और वातावरण के द्वारा प्रकट होता है, उसी प्रकार मनुष्य की बाहरी दशा उसकी भीतरी दशा से सम्बन्ध रखती है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि किसी विशेष अवसर पर किसी आदमी की स्थिति उसके समूचे चरित्र को प्रकट करती है, अपितु इसका यह अभिप्राय है कि उस स्थिति का भीतर के किसी विचार से गहरा सम्बन्ध है।

प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह जिस किसी भी दशा में हो, अपनें निजी विचारों के कारण ही है। वे विचार जिनसे उसने अपने चरित्र का गठन किया है, उसे स्थिति-विशेष तक पहुँचाते हैं। उसके जीवन में कोई

घटना संयोगवश या अचानक नहीं घटती। जीवन का ताना-बाना कुछ न टूटने वाले नियमों से ही तैयार होता है। ये नियम कभी नहीं बदलते। ये नियम सब प्रकार के लोगों पर लागू होते हैं; फिर वे चाहे अपनी परिस्थितियों के लिए अपने को ज़िम्मेदार मानें या न मानें।

मनुष्य उन्नत और विकासशील होने के कारण सदा विकास की ओर बढ़ता रहता है। जब वह जीवन की किसी स्थिति से भी आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण कर लेता है, तो पुरानी स्थिति का स्थान नयी स्थिति ग्रहण कर लेती है।

आदमी तभी तक परिस्थितियों का दास बना रहता है, जब तक वह समझता रहता है कि मैं बाहरी (भौतिक) दशाओं के अधीन हूँ। पर जब वह यह अनुभव करने लगता है कि मैं स्वयं शक्ति का स्रोत हूँ, और परिस्थितियों को जन्म देने वाले बीज और मिट्टी अर्थात् अपने मन और विचारों का मालिक हूँ, तब वह अपने ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है और अपना सच्चा मालिक बन जाता है।

जिस आदमी ने कुछ समय तक मानसिक संयम और आत्म-शुद्धि का अभ्यास किया है, वह इस बात

को अवश्य जान गया होगा कि जितना परिवर्तन उसने अपने भीतर किया है, उतना ही परिवर्तन उसकी बाहरी परिस्थितियों में भी हो गया है। यह सच है कि जब आदमी पूरे मनोयोग से अपनी बुराइयों को दूर करने का यत्न करता है, और जल्दी-जल्दी उन्नति करता है, तो उसे कई प्रकार की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों से होकर गुज़रना पड़ता है।

अचेतन मन में जिस वस्तु की इच्छा गुप्त रूप से रहती है, मनुष्य उसी की ओर आकर्षित होता है; या उन लोगों की ओर, जिनसे वह प्रेम करता है या भय-भीत रहता है। इस का कारण यह हैं कि वह अपनी मनचाही वस्तु का या प्रेमी व्यक्ति का या उसका, जिस-से वह डरता हैं, मन में बार-बार चिन्तन करता है। और मन में जो विचार बार-बार आयेगा, उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। उदाहरण के लिए—एक आदमी मौत से बहुत डरता है, यह डर उसके मन और मस्तिष्क पर चौबीसों घंटे छाया रहता है। यह निश्चय जानिये की इस आदमी कीं मौत बहुत शीघ्र हो जायेगी। भय मनुष्य के मन और शरीर को दुर्बल बना देता है। और दुर्बल मन और शरीर वाला व्यक्ति प्रत्येक संघर्ष में हार जाता है। यह देखा गया हैं कि छूत की

बीमारी फैलने पर जो लोग बहुत अधिक घबरा जाते हैं, उन्हें घर बैठे रहने पर भी बीमारी घेर लेती है। और जो लोग निडर होकर छूत वाले रोगियों की सेवा तक करते हैं, उन पर बीमारी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

आत्मा अपनी ऊँची आकांक्षाओं के कारण उन्नति के शिखर पर पहुँचती है और विषयों के जाल में फँसकर अवनति के गढ़े में गिरती है। परिस्थितियाँ ही वे कारण हैं, जिनके द्वारा आत्मा अपने मनचाहे लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

विचार रूपी प्रत्येक बीज, जो मन के खेत में बोया जाता है या जिसे मन के खेत पर गिरने दिया जाता है और जड़ पकड़ने का अवसर दिया जाता है, वह देर-सवेर अपनी ही किस्म के पौधे और फल-फूल पैदा करता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भले विचारों का भला और बुरे विचारों का बुरा फल होता है।

परिस्थितियों की बाहरी दुनिया का विचारों की भीतरी दुनिया के अनुसार ही रूप बनता है। भली या बुरी दोनों प्रकार की बाहरी परिस्थितियाँ सब मनुष्यों का वास्तविक प्रतिनिधित्व करती हैं। मनुष्य

अपनी बोयी खेती को खुद काटता है, वह अपने कर्मों को भोगता है। इसलिए वह दुःख या सुख दोनों से शिक्षा ग्रहण करता है।

मनुष्य अपने मानसिक विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं द्वारा शासित होता है। वे भले-बुरे, ऊँचे-नीचे चाहे जैसे भी हों, अन्त में वह उन्हें अपने बाहर जीवन में फलते-फूलते और पूरा होते देखता है। विकास और वातावरण के अनुरूप बन जाने का नियम सब जगह काम करता है। कोई भी व्यक्ति जुआघर में, शराब की दूकान पर या जेल की अँधेरी और गन्दी कोठरी में दुर्भाग्य के कारण या अचानक ही नहीं चला जाता। कुछ नीच और बुरे विचार और तुच्छ वासनाएँ उसके हृदय में बहुत दिनों तक अड्डा जमाए रहती हैं, और जब भी उन्हें अवसर मिलता है, एकाएक प्रकट हो जाती हैं।

परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती नहीं, वे तो मनुष्य के ऐसे रूप को प्रकट करती हैं, जो उसका सच्चा रूप होता है और जिस रूप को वह आज तक अपने भीतर सजाता-सँवारता रहा है। जब तक मनुष्य के विचार परिपूर्ण न हों, कोई कारण नहीं कि वह दुःख उठाये। इसी प्रकार तब तक विचार पवित्र और

ऊंचे नहीं बनते, तब कोई बाहरी प्रभाव ऐसा नहीं है जो उसे उन्नति और समृद्धि की ओर ले जाए।

अपने विचारों का मालिक होने के कारण मनुष्य ही अपने को बनाने वाला, कार्यों को करने-वाला और फलस्वरूप, भाग्यविधाता है। यहाँ तक कि आत्मा जन्मकाल में भी अपने अनुकूल अवस्था में जन्म लेती है और संसार-यात्रा में क़दम-क़दम पर उन परिस्थतियों को अपनी ओर आकर्षित करती है, जो उसकी पवित्रता अथवा नीचता, सबलता या निर्बलता को प्रकट करती हैं।

मनुष्य की इच्छाएं और कल्पनाएं पूरी नहीं होतीं। कारण कि हम उस चीज़ को, अपनी ओर नहीं खींच पाते, जिसे हम चाहते हैं, अपितु उस चीज़ को, जैसे कि हम स्वयं है। हमारे ही भीतरी विचार और इच्छाएं चाहे वे भली हों या बुरी–अपने ही जैसा भोजन पाकर पोषित होती हैं। हमारे भाग्य को बनाने वाली–ईश्वरीय शक्ति हमारे ही भीतर विद्यमान है और वह कोई और नहीं, हमारी आत्मा ही है। मनुष्य अपने हाथों में स्वयं ही हथकड़ियां डालता है। उसके विचार और कार्य ही इस जेलखाने के अधिकारी हैं। पर वे जेल के अधिकारी ही नहीं,

स्वतन्त्रता और शांति का सन्देश देनेवाले देवदूत भी हैं। पर यह तो मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह उन्हें जेल का अधिकारी बनाता है या देवदूत।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि 'मन ही मनुष्य को बांधने और छुड़ाने वाला है।' मनुष्य जिसकी इच्छा करता है या जिस चीज़ के लिए प्रार्थना करता है, उसे वह चीज़ नहीं मिलती; अपितु वह चीज़ मिलती है, जिसे वह लगातार परिश्रम और ईमानदारी से प्राप्त करता है। उसकी इच्छाएं और प्रार्थनाएं तभी पूरी होतीं और सुनी जाती हैं, जब उनसे उसके विचारों और कार्यों का मेल होता है।

इस सिद्धान्त के प्रकाश में परिस्थितियों और घटनाओं के विरुद्ध संघर्ष करने का क्या अर्थ है? अभिप्राय यह है कि बाहरी कार्यों द्वारा तो मनुष्य विद्रोह करता है और साथ ही भीतर मन में उनके कारणों को बनाए रखता है और पुष्ट करता रहता है। सम्भव है यह कारण प्रकट पाप के रूप में हों, या अज्ञात निर्बलता के रूप में; पर ये मनुष्य को प्रयत्न करने से रोकते हैं।

मनुष्य यह तो चाहता है कि उसकी परिस्थितियों में सुधार हो; पर वह अपने भीतर किसी प्रकार का

सुधार नहीं करता । यही कारण है कि वह उन्नति नहीं कर पाता और जहां का तहां रह जाता है । जो मनुष्य आत्म-संयम और कष्ट सहने से नहीं डरता, वह अवश्य ही अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है । यह बात भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सत्य है । जिस मनुष्य का उद्देश्य केवल धन-सम्पत्ति प्राप्त करना हो, उसे भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत त्याग और कष्ट-सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए । फिर जो व्यक्ति उन्नत और संयत जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसे तो और भी अधिक त्याग और कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए ।

उदाहरण के लिए, एक बहुत ही निर्धन आदमी है । उसे हर घड़ी इस बात की चिन्ता लगी रहती है कि किसी प्रकार मेरी दशा सुधरे और घर की सुख-सुविधाएं बढ़ जाएं । किन्तु वह सदा काम से जी चुराता रहता है और शिकायत करता है कि मेरा मालिक मुझे पूरा पारिश्रमिक (तनखाह) नहीं देता और इसलिए यदि मैं अपने मालिक को धोखा देकर कुछ रुपया हड़प जाता हूँ तो कुछ अनुचित नहीं रता । ऐसा आदमी उन्नति के उन सीधे-सादे और

प्रारम्भिक सिद्धान्तों को भी नहीं समझता जो वास्तविक उन्नति के कारण हैं । वह व्यक्ति, न केवल अपनी बिगड़ी दशा से ऊपर उठने के बिल्कुल अयोग्य है, अपितु अकर्मण्यता और भ्रामक विचारों के कारण वास्तव में अपने को और भी अधिक बुरी दशा की ओर खींच रहा है ।

एक दूसरा उदाहरण देखिए——एक धनवान् व्यक्ति खाने-पीने का बहुत शौकीन है और अपनी इसी बुरी आदत के कारण रोगों से घिरा रहता है । यद्यपि वह अपने इलाज के लिए सैकड़ों रुपए खर्चने को तैयार है, किन्तु अपने पेटूपन को छोड़ना नहीं चाहता । वह चाहता है कि चटपटे, मसालेदार, खट्टे-मीठे खाने भी खाता रहूँ और स्वास्थ्य भी ठीक रहे। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं; इसलिए उसका स्वस्थ होना असंभव है। ऐसा आदमी कभी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सकता। कारण यह कि वह स्वास्थ्य के आधारभूत नियमों को नहीं जानता ।

अब तीसरा उदाहरण लीजिए–एक आदमी किसी बड़े कारखाने का मालिक है। उसकी हमेशा यह कोशिश होती है कि मज़दूरों को कम से कम वेतन देकर ज़्यादा से ज़्यादा काम लिया जाए। और इए

प्रकार एक बड़ी रक़म बचाकर तिजोरी भरी जाए। पर होता इससे बिल्कुल उल्टा ही है। मज़दूर मन लगाकर काम नहीं करते। अच्छे कारीगर मज़दूर उसके कारखाने में टिकते नहीं। मज़दूर उसका मान तो करते ही नहीं, उल्टे उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कारखाने में चतुर कारीगरों के अभाव से और पूरा और अच्छा काम न होने के कारण घाटा पड़ने लगता है। और जब वह देखता है कि न तो मेरे पास पैसा रहा और न मान ही, तो अपने भाग्य को कोसने लगता है। ज़माने को बुरा बताता है और मज़दूरों के काम ठीक न करने की शिकायत करता है। किन्तु फिर भी यह बात उसकी समझ में नहीं आती कि अपनी इस दशा को बनाने वाला मैं स्वयं हूँ। मैं अपने बुरे और नीच स्वभाव के कारण घाटे में रहा हूँ।

ये तीन उदाहरण केवल इस सिद्धान्त को प्रकट करने के लिये दिये कि वास्तव में अपनी भली या बुरी अवस्था का कारण मनुष्य स्वयं है; यद्यपि यह बात उसे मालूम नहीं होती।

जब मनुष्य का उद्देश्य कोई अच्छा कार्य हो, किन्तु उसके विचारों और इच्छाओं का उस कार्य से मेल न बैठता हो, तो वह स्वयं अपने उद्देश्य की पूर्ति में

रुकावट डालता है। ऐसे अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर उनकी क्या ज़रूरत है; पाठक चाहें तो अपने मन और जीवन को बारीकी से छान-बीनकर विचारों के प्रभाव के नियम को जान सकते हैं। और जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा, तब तक बाहरी बातें और दलीलें काम नहीं दे सकतीं। अपने अनुभव से ही सच्चा और पूरा ज्ञान प्राप्त होता है।

परिस्थितियाँ इतनी पेचीदा और विचार की जड़ इतनी गहरी है और प्रत्येक व्यक्ति की सुख की अनुभूति में इतना भेद होता है कि किसी व्यक्ति की केवल बाहरी अवस्था को देखकर उसकी भीतरी अवस्था का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सम्भव है एक आदमी किसी बात में सच्चा और ईमानदार होने पर भी चिन्तित और दुःखी रहता हो; और एक दूसरा आदमी बेईमानी करता हुआ भी सुखी हो। इससे प्रायः लोग यह अनुमान लगा लेते हैं कि पहला आदमी सच्चाई और ईमानदारी के कारण दुःखी और तंग है और दूसरा बेईमानी के कारण सुखी और धनवान् है; किन्तु यह अनुमान बिना पूरा विचार किए ही लगा लिया जाता है। विचार करने पर मालूम होगा कि न तो यह परिणाम निकाला जा सकता है कि

बेईमान आदमी पूरी तरह पापी और ईमानदार आदमी पूरी तरह धर्मात्मा है; और न ही यह कि बेईमानी से आदमी धनवान् हो जाता है और ईमानदारी से दुःख और कष्ट उठाता है। सच बात तो यह है कि सम्भव है, बेईमान आदमी में भी कुछ ऐसे गुण हों कि जो ईमानदार आदमी में न हों और ईमानदार आदमी में कुछ ऐसी बुराइयां हों, जो बेईमान में न हों। ईमानदार आदमी अपने अच्छे विचारों और कार्यों का सुख भोगता है; किन्तु साथ ही अपने बुरे आचरण और विचारों के कारण दुःख पाता है। इसी प्रकार बेईमान आदमी भी अपने अच्छे-बुरे कामों का फल भोगता है। संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख-दुःख को उत्पन्न करने वाला स्वयं ही है। वह जैसा काम करता है, वैसा ही फल भोगता है।

कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि आदमी को भलमनसाहत के कारण दुःख उठाना पड़ता है। किन्तु जब तक आदमी अपने नीच और अपवित्र विचारों को अपने मन से बाहर न निकाल दे और अपनी आत्मा पर पड़े अज्ञानान्धकार के पर्दे को हटा न दे, तब तक किसीको यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि मैं जो दुःख और कष्ट उठा रहा हूँ, वह अपने

भले विचारों और कार्यों के कारण उठा रहा हूँ। 'पूर्णता' तक पहुँचने से पहले ही आदमी को यह मालूम हो जाता है कि मेरे मन और जीवन में वह बड़ा नियम काम कर रहा है, जो बुराई के बदले में भलाई और भलाई के बदले में बुराई कभी नहीं देता। इतना ज्ञान होने पर भी जब वह अपने पहले अज्ञान और अन्धविश्वास पर नज़र डालेगा, तो उसे मालूम हो जाएगा कि मेरा जीवन पहले भी न्याय-संगत था और अब भी न्याय-संगत है। और यह भी कि उसके पहले के भले या बुरे अनुभव उसके ही विचार और कार्यों के परिणाम थे।

अच्छे विचारों और अच्छे कामों से कभी भी बुरा परिणाम नहीं निकलता। भले काम का भला और बुरे का बुरा फल, प्रकृति का यही अटल नियम है। कहावत भी है कि 'अन्त भले का भला'। परिणाम सामने आने में कुछ देर-सवेर हो सकती है, पर वह होगा न्याय-संगत ही। बबूल के बीज से बबूल और आम के बीज से आम ही उत्पन्न होगा।

जहाँ तक भौतिक जगत् का सम्बन्ध है, अपढ़ से अपढ़ लोग भी उपर्युक्त नियम को खूब समझते हैं और इसके अनुसार आचरण करते हैं। किन्तु कितने खेद

की बात है कि आध्यात्मिक और अन्तर्जगत् में कुछ इने-गिने लोग ही इस नियम के अनुसार आचरण करते हैं। यद्यपि यह नियम बहुण ही सीधा-सादा, प्रत्यक्ष और अटूट है।

दुःख निश्चित रूप से किसी न किसी अपवित्र विचार का फल होता है। वह इस बात का सूचक है कि दुःखी व्यक्ति अपने साथ, अपने अस्तित्व के नियम के विरुद्ध आचरण कर रहा है। दुःख का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह आदमी को शुद्ध और पवित्र बना देता है और आदमी में जितने अशुद्ध और अपवित्र विचार होते हैं उन्हें जला डालता है। दुःख आदमी को शुद्ध बनाने में वही काम करता है, जो आग सोने को शुद्ध करने के लिए करती है। जो आदमी शुद्ध पवित्र हो, उसे दुःख कैसे हो सकता है? भला खरे सोने को भी कोई आग में डालता है। ठीक इसी प्रकार निर्मल आत्माएँ कभी दुःख नहीं भोगतीं।

मनुष्य कष्ट तभी पाता है, जब कि उसकी मानसिक दशा और बाहरी दशा में साम्य नहीं होता; और सुख तभी पाता है जबकि उसकी भीतरी और बाहरी दशा में साम्य होता है। अच्छे विचारों का मानदण्ड सांसारिक धन-सम्पत्ति कदापि नहीं है।

उनका माप तो आनन्द है—आनन्द जो कि मन से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार कुविचारों का परिणाम धन-सम्पत्ति का अभाव नहीं, अपितु मानसिक तोष—आनन्द का अभाव है। इसीलिए प्रायः देखा जाता है कि कुछ लोग झोंपड़ियों में भी स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते हैं और कुछ महलों में भी नरक-यातना जैसा दुःख पाते हैं। धन-दौलत और आनन्द में तभी मेल होता है, जबकि धन का सदुपयोग किया जाये, उसे भले कामों में लगाया जाए और वह अच्छे उपायों द्वारा ही कमाया गया हो। निर्धन व्यक्ति तभी विपत्ति में फँसता है, जब वह समझने लगता है कि मेरे दुर्भाग्य ने मुझे कष्टों में धकेल दिया है।

निर्धनता और इन्द्रियों की गुलामी दोनों गिरावट की सीमाएं हैं। ये दोनों ही अस्वाभाविक और मानसिक विषमता का परिणाम हैं। जो आदमी स्वस्थ और उन्नतिशील नहीं है, वह आदमी स्वाभाविक अवस्था में नहीं है। सुख, स्वास्थ्य और उन्नति इस बात का प्रमाण है कि इस व्यक्ति की भीतरी और बाहरी दशाओं में साम्य है, एकरूपता है।

मनुष्य उसी समय वास्तविक रूप में मनुष्य बनने लगता है, जब से वह रोना, झींकना और शिकायत

करना छोड़ देता है और रहस्यमय सूत्र-संचालक के न्याय की खोज करने लगता है और अपने को उसके अनुकूल बनाने लगता है। तब वह दूसरों पर दोषारोपण करना छोड़ देता है और अपनी दुरवस्था के लिए दूसरों को ज़िम्मेदार नहीं ठहराता । उस समय वह स्वस्थ, सबल और उच्च विचारों द्वारा अपना निर्माण करता है। और परिस्थितियों को दोषी ठहराने के स्थान पर परिस्थितियों के प्रति अपने दृष्टि-कोण को बदल देता है, और उन्हें अपनी उन्नति में सहायक तथा अपनी समार्थ्य को प्रकाश में लाने का साधन समझता ।

यह संसार निश्चित नियमों पर आधारित है। इसका कोई भी कार्य अनिश्चित नहीं है । जीवन की वास्तविकता न्याय है, न कि अन्याय । संसार के आध्यात्मिक राज्य में शासन की बागडोर धर्म के हाथ में है, पाप के हाथ में नहीं । मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को इस धार्मिक राज्य के अनुकूल बनाए और सद्विचारों और सद्गुणों को ग्रहण करे तथा कुविचारों और दुर्गणों को छोड़ दे । जब वह अपने चरित्र को पवित्र बना लेगा और दूसरे लोगों और वस्तुओं के बारे में अपने दृष्टिकोण को बदल लेगा, तब

देखेगा, कि वे लोग और वे वस्तुएँ भी उसके लिए नये रूप में, बदले हुए रूप में सामने आएँगी। परिस्थितियों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलना तो सम्भव है, किन्तु परिस्थितियों को बदलना उतना आसान नहीं है।

इस सचाई का प्रमाण प्रत्येक व्यक्ति के पास वर्तमान है। और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक दशा की जांच-पड़ताल करके सरलता से इसकी खोज कर सकता है। किसी आदमी को अपने विचार पूर्ण रूप से बदलने दीजिए और फिर देखिये कि उसकी बाहरी दशा में भी कितना परिवर्तन हो गया है। कुछ लोग जो यह सोचते हैं कि हम अपने विचारों को गुप्त रख सकते हैं, यह उनकी भ्रान्त धारणा है। वे कदापि ऐसा नहीं कर सकते। कारण कि विचार शीघ्र ही स्वभाव (आदत) का रूप ग्रहण कर लेते हैं। और स्वभाव बाहरी दशा में प्रकट हुए बिना नहीं रहता। एक नीतिकार का कथन है कि "स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते", अर्थात् मनुष्य का स्वभाव उसके सारे भावों पर काबू पाकर शीघ्र ही प्रकट हो जाता है।

नीच और घृणित विचार, चोरी, जुआखोरी, मद्यपान और व्यभिचार का रूप धारण कर लेते हैं

और रोग और ग़रीबी का कारण बनते हैं । प्रत्येक प्रकार से गन्दे विचार मनुष्य के स्वभाव को प्रभावित करके, उसे दुःख और कष्ट के गढ़े में धकेल देते हैं। कुविचार से मानसिक दुर्बलता और चिन्ता उत्पन्न होती है। और दुर्बल-चित्त व्यक्ति अपनी चारित्रिक हीनता के कारण विपत्तियों में फँस जाता है। भय से कुशंका, कुशंका से अस्थिर बुद्धि, उससे विचारों की दुर्बलता और उससे अकर्मण्यता का जन्म होता है। अकर्मण्यता के परिणामस्वरूप असफलता, निर्धनता और पराधीनता का जन्म होता है।

प्रत्येक प्रकार के स्वार्थपूर्ण विचार से स्वार्थपरता का स्वभाव बनकर दुःख का कारण बनता है। इसके विपरीत सब प्रकार के अच्छे विचारों से खुशी, विनय, दया और प्रेम के भाव जगते हैं और भीतरी तथा बाहरी आनन्द का कारण बनते हैं। पवित्र विचारों से प्रेम, विषयों पर क़ाबू पाने और विचारों की दृढ़ता के भाव पैदा होते हैं। साहस, आत्म-विश्वास, आत्म-संयम से मानवोचित गुण उत्पन्न होते हैं। और उनके कारण जीवन में सफलता, स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त होता है। स्वस्थ विचारों से मनुष्य परिश्रमी और पवित्र बनता है और जीवन में सच्चे

आनन्द का उपयोग करता है। कोमल और क्षमा-पूर्ण स्वभाव से मनुष्य अजातशत्रु बनता है और उसके शत्रुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जातो है। इस प्रकार शत्रु-रहित होकर वह सुरक्षित जीवन बिताता है। इसी प्रकार प्रेम और निःस्वार्थ-परता के विचारों से परोपकार और सेवा का स्वभाव बनकर, मनुष्य सच्ची उन्नति की ओर बढ़ता है।

कोई विशेष प्रकार का विचार जब लगातार मनुष्य के मन में रहता है तो वह चाहे भला हो या बुरा, चरित्र और परिस्थिति पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से अपनी परिस्थितियों का चुनाव नहीं कर सकता; किन्तु वह अपने विचारों को अपनी इच्छानुसार चुन सकता है और विचारों से ही परिस्थितियों का निर्माण होता है। इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष रूप से अपने लिए सुखद परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है।

कोई मनुष्य जिस प्रकार के विचारों को बढ़ावा देना चाहता है, प्रकृति उनको कार्य-रूप में बदलने के लिए सहयोग देती है और ऐसे अवसर उपस्थित करती है, जिनसे उसके भले या बुरे——दोनों प्रकार के विचार शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं।

उदाहरण के रूप में, यदि कोई मनुष्य अपने बुरे विचारों को छोड़ दे तो सारी दुनिया उसके प्रति प्रेम-पूर्ण व्यवहार करेगी और उसको सब प्रकार से सहायता करने को तैयार हो जायेगी। यदि कोई मनुष्य निराशा और निर्बलता के विचार छोड़ दे तो चारों ओर से उसे अपने आशापूर्ण स्वस्थ विचारों को दृढ़ बनाने के अवसर मिलने लगेंगे। मन में भले विचारों को स्थान देने पर कभी भी दुर्भाग्य या दुरवस्था उसका पीछा नहीं करेंगे, नहीं कर सकते। यह दुनिया शीशे के उस खिलौने की तरह है, जिसमें क्षण प्रतिक्षण तरह-तरह के रंग और आकृतियां प्रतिबिम्बित दिखाई देती हैं। इसी प्रकार यह बाहरी संसार भी अपने ही चपल-चंचल विचारों का प्रतिबिंब है। इसमें मनुष्य को अपने विचारों के परिवर्तन से तरह-तरह की अकृतियां दिखाई देती हैं। अभिप्राय यह कि जैसे-जैसे मनुष्य के विचार बदलते जाते हैं, वैसे ही वैसे उसकी बाहरी परिस्थितियों का रूप भी बदलता जाता है।

वास्तव में देखा जाये तो मनुष्य के विचार ही सब कुछ हैं। विचार ही उसे धन-धान्य का स्वामी बना देते हैं और विचार ही पथ का भिखारी।

विचारों से मनुष्य देवता की तरह पूजा जाता है और विचार ही उसे राक्षस भी बना देते हैं। भाग्य कोई भिन्न वस्तु नहीं है, उसे हम स्वयं बनाते हैं और प्रतिदिन बनाते हैं। जहाँ तक सम्भव हो, अच्छे विचारों को अपने मन में स्थान देना चाहिए और दृढ़ संकल्प द्वारा उनके अनुसार ही अपना आचरण भी बनाना चाहिए। बुरे और अपवित्र विचारों को मन से बाहर निकालकर देखने पर यह संसार, जो आज दु:ख और कष्ट का घर दिखाई देता है, सुख और आनन्द को देने वाला स्वर्ग बन जाएगा, और कल्पवृक्ष और कामधेनु की भान्ति मनुष्य की सारी इच्छाओं को पूरा कर सकेगा।

३. जैसा तन, वैसा मन

शरीर मन का दास है। जैसे दास स्वामी की आज्ञा का पालन करता है, वैसे ही शरीर भी मन की आज्ञा का पालन करता है--फिर वह आज्ञा चाहे कैसी ही हो। मन की अनुचित आज्ञाओं के पालन से शरीर रोगी और दुर्बल हो जाता है, किन्तु उचित आज्ञाओं–सद्-विचारों के अनुसार कार्य करने से मनुष्य के शरीर में यौवन, शक्ति और सौन्दर्य आता है।

जिस प्रकार विचारों का प्रभाव परिस्थितियों पर पड़ता है, उसी प्रकार शरीर और स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जैसे मनुष्य के विचार होते हैं, उन्हीं के अनुसार उसका शरीर और स्वास्थ्य भी होता है। अस्वस्थ विचार अस्वस्थ शरीर के रूप में प्रकट होते हैं। भय के विचार उतनी ही तेज़ी से मनुष्य को मार डालते हैं, जितनी तेज़ी से बन्दूक की गोली। भय ने हज़ारों

लोगों की हत्या की है और आज भी कर रहा है। जो लोग किसी न किसी रोग के भय से भयभीत रहते हैं, रोग उन्हें अवश्य घेर लेते हैं। चिन्ता घुन की तरह शरीर को भीतर से खोखला कर देती है और चिन्ता द्वारा दुर्बल हुए शरीर पर रोग आक्रमण करके उसे अपना घर बना लेते हैं। बुरे विचारों को भले ही कार्य-रूप में परिणत न किया जाए, वे मन में रहते हुए भी शरीर को क्षीण कर देते हैं।

स्वस्थ, सच्चे और निर्मल विचार शरीर में उत्साह, शक्ति और सौन्दर्य का निर्माण करते हैं। मनुष्य का शरीर एक ऐसी नाज़ुक मशीन है, जो मन में उत्पन्न होने वाले विचारों से बहुत शीघ्र प्रभावित होती है। भीतरी विचारों का प्रभाव शरीर पर उसी प्रकार अंकित हो जाता है, जैसे आधुनिक मशीनें अपनी भीतरी गतिविधि को कागज़ पर अंकित करती हैं। विचार भले ही अच्छे हों या बुरे, शरीर पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहते।

जब तक मनुष्य दूषित विचारों को फैलाते रहते हैं, तब तक उनका रक्त दूषित और विषैला बनता रहता है। पवित्र मन से पवित्र जीवन और स्वस्थ शरीर बनता है और अपवित्र मन से अपवित्र जीवन

और अस्वस्थ शरीर। विचार ही कार्य, जीवन और प्रत्यक्ष शरीर का स्रोत हैं। इसलिए पहले स्रोत को निर्मल, पवित्र बनाइए, बाक़ी सब अपने-आप ठीक हो जाएगा।

यह स्मरण रखिए कि केवल खान-पान में परिवर्तन करने से आपका शरीर हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। खान-पान के साथ मन में स्वस्थ और पुष्ट विचारों को भी लाना होगा। विचारों के निर्मल-पवित्र हो जाने पर ऐसी चीज़ों के खाने को मन ही नहीं करता जो शरीर के लिए हानिकारक हों।

निर्मल विचारों से स्वभाव निर्मल बनता है। केवल सन्त-महात्माओं का नाम धारण करने मात्र से कोई सन्त-महात्मा नहीं बन सकता। वास्तविक सन्त-महात्मा बनने के लिए मन की पवित्रता सबसे पहली शर्त है। और जिसका मन पवित्र होगा, वह शरीर को भी मलिन नहीं रहने देगा। मलिन शरीर में निर्मल मन का निवास नहीं हो सकता। जिसने अपने विचारों को निर्मल पवित्र बना लिया हो, उसे रोगों के कीटाणुओं से भय नहीं रह जाता।

यदि आप अपने शरीर की रक्षा करना चाहते हैं तो पहले बुरे विचारों से अपने मन की रक्षा करें।

यदि आप अपने शरीर में सुन्दरता और स्वास्थ्य देखना चाहते हैं तो पहले मन को सुन्दर और स्वस्थ बनाइए। ईर्ष्या, द्वेष, निराशा और मन की दुर्बलता के विचारों से शरीर का सौन्दर्य और स्वास्थ्य नष्ट होता है। मनुष्य में चिड़चिड़ापन अचानक उत्पन्न नहीं होता। वह उसके चिड़चिड़े विचारों का परिणाम होता है। मलिन मुख मलिन विचारों की छाया के कारण होता है। क्रोध, गर्व और जड़ता के कारण मुख पर झुर्रियां पड़ जाती हैं।

मैं एक ९६ वर्ष की स्त्री को जानता हूँ। उसके चेहरे पर एक युवती की तरह सौंदर्य और भोलापन है। और एक अधेड़ अवस्था के मनुष्य को भी जानता हूँ। उसका चेहरा बड़ा बेडौल और भद्दा है। इस अन्तर का कारण स्पष्ट है––वह स्त्री सदा प्रसन्न-चित्त रहती है, सदा उत्साहित रहती है और कभी किसी का बुरा नहीं सोचती। इसके विपरीत वह आदमी सदा क्रोध की आग में जला करता है। चिन्ता उसे खाए डालती है और वासनाएँ उसे सदा घेरे रहती हैं। स्त्री सन्तोषी स्वभाव की है और पुरुष असन्तोषी।

जिस प्रकार साफ़ और ताजी हवा तथा प्रकाश के बिना कोई भी घर सुन्दर और स्वास्थ्य के योग्य

नहीं हो सकता, उसी प्रकार आनन्द, शान्ति और सन्तोष के विचारों को मन में स्वतन्त्र रूप से स्थान देने पर ही शरीर पुष्ट और चेहरा शान्त हो सकता है। बूढ़ों में कुछ के चेहरों पर तो सहानुभूति की रेखाएँ (झुर्रियां) और कुछ के पर वासनाओं और क्रोध-पूर्ण विचारों की झुर्रियाँ दिखाई देती हैं। प्रत्येक व्यक्ति रेखाओं की इस लिपि को पढ़ सकता है। जिन लोगों ने अपना जीवन भलाई और सत्यता में बिताया है, उनका बुढ़ापा शांति और संतोष के साथ अस्त होते सूर्य की तरह मधुर और सुखद हो जाता है। कुछ दिन पहले मैंने एक दार्शनिक को मृत्यु-शैया पर पड़े देखा था। अवस्था की दृष्टि से तो वह अवश्य बूढ़ा था, पर बुढ़ापे का और कोई लक्षण उसमें दिखाई नहीं देता था। जैसी प्रसन्नता, संतोष और शान्ति से उसने अपना जीवन बिताया था, वैसी ही शाँति और संतोष के साथ उसने अपने प्राण भी त्यागे। अन्तिम क्षण तक वह प्रसन्न और शांत रहा।

शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए प्रसन्नता के समान अच्छा दूसरा कोई चिकित्सक नहीं है। शोक और संताप को मिटाने के लिए सद्भावना ही रामबाण औषध है।

दूसरों के लिए बुरा चाहना, दूसरों की त्रुटियां और कमज़ोरियां उभारना तथा सन्देह और ईर्ष्या के विचारों में जीवन बिताना, वैसा ही है, जैसा कि अपने बनाए जेल खाने में स्वयं कैदी होकर रहना। इसके विपरीत सबकी भलाई सोचना, सबके साथ खुश रहना, धैर्य के साथ दूसरों की अच्छाइयाँ देखना, पर-निन्दा और ईर्ष्या-द्वेष का त्याग—ऐसे स्वार्थ-रहित विचार ही स्वर्ग के द्वार हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन प्राणिमात्र के लिए मैत्री और सद्भावना के विचार रखता है, उसे बदले में सच्ची और स्थायी शांति की प्राप्ति होती है।

४. विचार और लक्ष्य

विचार बिना किसी लक्ष्य के कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते। कार्य-सिद्धि के लिये लक्ष्य का अनुसरण करने वाले विचार और विचारों के अनुकूल लक्ष्य का होना आवश्यक है।

प्राय: देखा जाता है कि अधिकतर लोग अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित नहीं कर पाते। लक्ष्यहीन जीवन वैसा ही है, जैसे कि कोई ज़हाज का कप्तान अपने ज़हाज़ को, बिना यह निश्चय किये कि मुझे कहाँ जाना है, सागर की लहरों में छोड़ दे। परिणाम स्पष्ट है। सौ प्रयत्नों के बावजूद गन्तव्य स्थान का पता न होने के कारण उसे सदा-सदा के लिये भटकना पड़ेगा। लक्ष्य निर्धारण न करना, जीवन का कोई उद्देश्य निश्चित न करना एक बुराई है, पाप है। जो लोग शोक और सन्ताप से बचना चाहते हों, उन्हें चाहिये कि वे सदा

अपने जीवन का एक लक्ष्य, एक उद्देश्य अपने सामने रखें।

जिनके जीवन का कोई केन्द्र-बिन्दु नहीं होता, वे चिन्ताओं, विपत्तियों और कष्टों के शिकार बन जाते हैं और पथ-भ्रष्ट व्यक्ति सरलता से बुराई की ओर झुक सकता है, झुक जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने जीवन का एक सुस्पष्ट, लक्ष्य, एक निश्चित उद्देश्य बना ले और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सदा यत्नशील रहे। उसे के विचार और व्यवहार उस लक्ष्य के अनुकूल और लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले होने चाहियें। ऐसा करने पर निश्चित रूप से लक्ष्य की सिद्धि होगी। लक्ष्य चाहे आध्यात्मिक हो या भौतिक, विचारशक्ति को उस में केन्द्रित करने से सफलता अवश्य मिलेगी। लक्ष्य के साधक को चाहिये कि वह अपने विचारों को छोटी-छोटी इच्छाओं और कल्पनाओं में भटकने से बचाकर लक्ष्य की ओर मोड़े। लक्ष्य सामने रख लेने पर आत्म-संयम और मन की एकाग्रता का मार्ग सरल और सुगम हो जाता है। इससे व्यक्तित्व का विकास होता है और जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव होता है। उद्देश्य-पूर्ति में प्रारम्भिक असफलताओं के बावजूद

निरन्तर प्रयत्न से जो चारित्रिक दृढ़ता उत्पन्न होती है, वही आगे चलकर सफलता का कारण बनती है ।

जिन लोगों ने अपने जीवन का कोई महान् लक्ष्य निश्चित नहीं किया है, या जो अपने को उसके लिये असमर्थ पाते हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपने विचारों को कर्त्तव्य-पालन में केन्द्रित करें। यहाँ कर्त्तव्य-पालन से अभिप्राय उन कार्यों से है, जो उन्हें नित्य-प्रति के जीवन में करने पड़ते हैं। छोटे या साधारण समझकर उनकी उपेक्षा न करें । इस प्रकार मन को एकाग्र करने और कार्य-शक्ति को विकसित करने में सहायता मिलती है। और जब मन की एकाग्रता और कार्यशक्ति का विकास हो जाए तो फिर कोई ऐसा कार्य नहीं रह जाता, जिसे करना सम्भव न हो।

निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी अपनी निर्बलता के कारणों को जानकर और इस सच्चाई पर विश्वास रख-कर कि लगातार अभ्यास और प्रयत्न द्वारा कार्य-शक्ति का विकास और वृद्धि हो सकती है, तत्काल प्रयत्न और परिश्रम करना आरम्भ कर देगा, और लगातार प्रयत्न, परिश्रम और अभ्यास द्वारा अवश्य उन्नति कर लेगा, और अन्त में दिव्य शक्ति प्राप्त कर लेगा; क्योंकि

भगवान् भी उन्हीं की सहायता करता है जो प्रयत्न और परिश्रम करते हैं।

जैसे शरीर से दुर्बल कोई व्यक्ति पौष्टिक भोजन व्यायाम और संयम द्वारा अपने को बलवान् बना सकता है, वैसे ही दुर्बल मन और संकल्प वाला व्यक्ति भा मानसिक दृढ़ता और संकल्प-शक्ति को प्राप्त कर सकता है।

शारीरिक और मानसिक दुर्बलता ओर लक्ष्यहीनता का त्याग कर देना और लक्ष्य सामने रखकर चिन्तन ओर कार्य करना, उन महापुरुषों की पंक्ति में बैठना है, जो जीवन में सफलता ओर सिद्धि प्राप्त करते हैं। परिस्थितियाँ उनकी दास बन जाती हैं, जो निर्भय और निःशंक होकर प्रयत्न करते हैं, और अपने विचारों पर दृढ़ रहते हैं तथा परिश्रम से नहीं घबराते।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपने लक्ष्य को सदा अपनी दृष्टि में रखे और उसकी सफलता के लिये अपने मन में एक सीधा मार्ग तय कर ले। और फिर जैसे दिशासूचक यंत्र (कुतुबनुमा) की सूई दाएँ-बाएँ न जाकर सीधी अपने लक्ष्य की ओर संकेत करती है, वैसे ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। भय और संदेह को मन से निकाल दे; क्योंकि ये दोनों मनुष्य को लक्ष्य प्राप्त

करने में रुकावटें पैदा करते हैं और उसे अपने लक्ष्य से हटाते हैं, और भटका देते हैं । इस प्रकार सारे प्रयत्नों को निष्फल बना देते हैं । इनके रहते न कभी कोई काम पूरा हुआ और न होगा। ये सदा असफलता की ओर ले जाते हैं। मनुष्य के मन में सन्देह और भय के प्रवेश करते ही उसका उत्साह नष्ट हा जाता है और विचार-शक्ति भी निर्बल हो जाती है।

जब कोई मनुष्य यह जान लेता है कि मं अमुक कार्य को कर सकता हूँ तो उसके मन में कार्य करने की इच्छा का उद्गम होता है। भय और सन्देह कार्य-शक्ति के कट्टर शत्रु हैं। जो इन्हें अपने मन में स्थान देता है, वह अपने लिए रुकावटों और आपत्तियों को बुलाता है; और जिसने इन दोनों पर विजय प्राप्त कर ली, उसका प्रत्येक विचार शक्तिशाली होगा, और वह बड़ी बहादुरी से प्रत्येक कठिनाई का सामना कर सकता है। उसके लक्ष्य का पौधा उचित ऋतु (अवसर) पर लगाया जाता है और उसका विकास ठीक ढंग से होता है। समय आने पर वह खूब फलता-फूलता है और उसके फल पूरे तौर पर पककर ही धरती पर गिरते हैं। वे समय से पहले या कच्चे कभी नहीं गिरते। अभिप्राय यह है कि ऐसे व्यक्ति

एक दिन अपने लक्ष्य को अवश्य ही प्राप्त कर लेते हैं।

लक्ष्य के साथ जब मनुष्य के निर्भय और निःशंक विचारों का मेल होता है तो उन विचारों में रचनात्मक उत्पादक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जो व्यक्ति इस बात को भली प्रकार जान लेता है, उसके विचारों में चंचलता और अस्थिरता शेष नहीं रह जाती। तुच्छ विचारों से वह अपने को मुक्त कर लेता है और उच्च और शक्तिशाली विचारों को अपनाकर वह दिन-प्रतिदिन ऊंचा उठता जाता है—परिस्थितियों से और चिंताओं से। वह अपनी मानसिक शक्ति को अपने अधीन रखता है और उससे उपयोगी कार्य करवाता है।

५. सफलता और विचार

मनुष्य जब किसी वस्तु को प्राप्त करता है अथवा जिस किसी कार्य में सफल होता है, वह सब उसके विचारों का ही परिणाम है। इस संसार में, जहाँ पूर्ण-रूप से न्याय का राज्य है, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। किसीकी निर्बलता और शक्ति, पवित्रता और अपवित्रता उसकी निजी वस्तु है और उसके लिए वही और केवल वही ज़िम्मेदार है। उसके सुख और दुःख उसी के भीतर से उत्पन्न होते हैं। जो जैसा चाहता है, वह वैसे ही हो जाता है। मनुष्य मनोमय है, वह अपने मन के अनुसार ही बनता-बिगड़ता है।

कोई शक्तिशाली मनुष्य उस समय तक किसी निर्बल मनुष्य की सहायता नहीं करता, जब तक कि वह निर्बल मनुष्य स्वयं उससे सहायता लेने के लिए

तैयार न हो। और उसे चाहिए कि वह स्वयं ही शक्तिशाली बने और उचित भोजन, व्यायाम और संयम द्वारा स्वयं उस शक्ति को प्राप्त करे, जिस शक्ति के कारण वह दूसरों की प्रशंसा करता है। अभिप्राय यह है कि अपनी दशा को बदलने के लिए किसी दूसरे के सहयोग-सहायता काम नहीं दे सकते; केवल अपने प्रयत्न द्वारा ही यह संभव है।

अब तक प्रायः लोगों का ऐसा विचार था कि दुनिया में बहुत-से आदमी इसलिए गुलामी का जीवन बिता रहे हैं, क्योंकि कुछ लोग अत्याचारी प्रकृति के हैं और वे उन्हें गुलामों का जीवन बिताने पर विवश करते हैं। इसलिये हमें इन अत्याचारियों से घृणा करनी चाहिए। किन्तु नए विचारकों का मत इसके सर्वथा विपरीत है। उनका कहना है कि कुछ लोग इस कारण अत्याचारी हैं कि बहुत से लोग गुलाम हैं––गुलाम मनोवृत्ति के हैं। इसलिए हमें गुलामों से घृणा करनी चाहिए क्योंकि उन्हीं के कारण कुछ लोगों को अत्याचारी बनना पड़ा है। वास्तविकता यह है कि गुलाम और अत्याचारी दोनों ही अज्ञान में फँसे हैं और प्रत्यक्ष रूप में एक-दूसरे को दुःख देते जान पड़ते हैं। वास्तव में वे अपने को ही दुखी करते हैं,

और इस प्रकार आत्म-वंचना में लगे हुए हैं।

जो ज्ञानी जन हैं, वे दुखी आदमी की विवशता और अत्याचारी की निर्दयता में एक ही नियम को कार्य करते देखते हैं और वह नियम है न्याय का नियम। प्रकृति का न्याय। जिसे मानवता से सच्चा प्रेम है, वह दोनों का दुःख देखकर किसीकी निन्दा नहीं करता। वह सच्चे हृदय से दोनों को गले लगाता है और चाहता है कि दोनों ही उस दशा से ऊपर उठें।

जिसने दुर्बलता पर विजय प्राप्त कर ली है और स्वार्थपूर्ण विचारों को छोड़ दिया है, वह न किसी पर अत्याचार करता है और न उस पर कोई अत्याचार कर सकता है। वह न अत्याचारी है, न पीड़ित। वह सच्चा मानव है—मुक्त और स्वतन्त्र है।

मनुष्य अपने विचारों को ऊँचा बनाने से ही उँचा उठता है। विजय और सफलता प्राप्त करता है। इसके विपरीत आचरण से मानव सदा निर्बलता, दुश्चिन्ता, असफलता और निराशा का जोवन बिताता है।

सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि विचारों को दासता और पाशविक वासनाओं से ऊपर उठाया जाए। सफलता प्राप्त

करने के लिए यद्यपि समग्र रूप से इच्छाओं का विरोध करना आवश्यक नहीं है, तथापि उनका एक अंश तो छोड़ना ही पड़ेगा। जिस मनुष्य के विचार विषय-वासनाओं की ओर लगे हुए हों, वह न तो स्पष्ट रूप में चिन्तन-मनन कर सकता है और न ही कार्य करने का कोई नियमित ढंग अपना सकता है। वह अपना रहस्यमयी शक्तियों से भी सदा अपरिचित रहेगा। उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकेगा और इस प्रकार सदा ही असफलता का जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा व्यक्ति विचारों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण अपने कार्य-व्यवहार पर भी नियंत्रण नहीं रख सकता और किसी भी ज़िम्मेदारी के काम को नहीं निभा सकता। वह न तो स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और न कार्य ही। वह कभी अपने पाँवों पर खड़ा नहीं हो पाता, और सदा किसी सहारे की खोज में रहता है। वह अपने सीमित विचारों के घेरे से बाहर नहीं जा सकता।

जैसे बिना मूल्य दिये बाज़ार से कोई वस्तु नहीं मिलती, ठीक उसी प्रकार बिना बलिदान किये उन्नति या सफलता प्राप्त करना असंभव है। मनुष्य जितना ही अपनी विषय-वासनाओं का संयम करेगा, उतना ही

अपने मन को एकाग्र करके संकल्प-शक्ति और आत्म, विश्वास को दृढ़ बनाएगा। वह अपने विचारों को जितना ऊँचा बनाएगा, उतना ही उत्साही, सच्चा और सदाचारी बनेगा। उसकी सफलता उतनी ही ज़्यादा होगी और उसके कार्य उतने ही पवित्र और स्थायी होंगे।

संसार में लोभी, दुराचारी और पापी की सहायता कोई नहीं करता। ऐसे लोग कभी भी फलते-फूलते नहीं देखे जाते। यद्यपि कभी-कभी ऊपर से देखने पर यह मालूम पड़ता है कि वे सब प्रकार से सुखी हैं, पर वास्तविकता इसके विपरीत है। संसार में सच्चे, उदार स्वभाव वाले और धर्मात्मा लोगों का ही सब साथ देते हैं। उनकी सेवा और सहायता करके लोग अपने को धन्य मानते हैं। इस सचाई को सभी देशों में और सभी युगों में, महान् युग-प्रवर्तक पुरुषों ने, भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने आचरण द्वारा प्रमाणित किया है। इस सचाई को जो व्यक्ति स्वयं जानना और प्रमाणित करना चाहे, उसे चाहिए कि वह अपने विचारों को उच्च से उच्चतर बनाकर दिन-प्रतिदिन धर्मात्मा और सदाचारी बनने का प्रयत्न करे।

जीवन और जगत् में जो कुछ सत्य, कल्याणकारी

और सुन्दर है, या ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो विचार और मनन किया जाता है, उसी का परिणाम बौद्धिक सिद्धियाँ हैं। कभी-कभी लोग ऐसी सिद्धियों को लोभ और स्वार्थ से उत्पन्न बताते हैं; किन्तु वास्तव में वे दीर्घकाल के कठोर परिश्रम और पवित्र, उदार और स्वार्थहीन विचारों का स्वाभाविक परिणाम हैं।

आध्यात्मिक सिद्धियाँ पवित्र आकांक्षाओं का परिणाम हैं। जो मनुष्य निरन्तर अच्छे विचारों को अपने मन में स्थान देता है एवं पवित्र और निःस्वार्थ भावों से अपने हृदय को भरपूर रखता है, उसका जीवन अवश्य ही उन्नत और पवित्र होगा और वह निश्चित रूप से सुखी और भाग्यवान् बन जाएगा; उसका पद और प्रभाव बढ़ेगा। ऐसे व्यक्ति का उन्नति के शिखर पर पहुँचना और अच्छी दशा में होना उतना ही निश्चित है, जितना सूर्य का क्षितिज तक पहुँचना और चन्द्रमा का पूर्णत्व प्राप्त करना।

सफलता, वह चाहे किसी भी प्रकार की हो, निरन्तर प्रयत्न और स्वस्थ विचार का मुकुट है। सदाचरण, विचार और संकल्प की दृढ़ता, उदारता, निःस्वार्थ भावना और पवित्रता—ये ऐसे गुण हैं जिनके कारण मनुष्य अपने समाज, साथियों और परिस्थितियों

से बहुत ऊँचा उठ जाता है। इसके विपरीत आलस्य, जड़ता, पशुता, अस्थिरता, स्वार्थपरता और सदाचार-हीनता से वह नीचे ही नीचे गिरता जाता है।

यह सर्वथा सम्भव है कि कोई मनुष्य ऊँची सफलता पाकर और आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करने पर भी मिथ्या अहंकार, स्वार्थ और दुराचार के कारण फिर पथ-भ्रष्ट हो जाए और पतितावस्था में पहुँच जाए।

अच्छे विचारों के कारण प्राप्त सफलता भी सतर्क, सचेत रहकर उसकी रक्षा करने से ही स्थिर रह सकती है। प्रायः लोग एक बार सफलता प्राप्त कर लेने पर उसके प्रति उपेक्षा का व्यवहार करते हैं, सचेत होकर उसकी रक्षा नहीं करते, और यही कारण है कि वे शीघ्र असफलता का मुँह देखने के लिये विवश होते हैं।

सब प्रकार की सफलताएँ--फिर चाहे वे व्यापार के क्षेत्र में हों, बुद्धि के क्षेत्र में हों या आध्यात्मिक हों, अच्छे विचारों का परिणाम होती हैं। वे सब एक ही नियम द्वारा प्रेरित होती हैं। भेद केवल सफलता के स्वरूप का होता है।

जो साधारण-सी सफलता चाहता है, उसे बलिदान भी साधारण-सा ही करना पड़ेगा; और जो विशेष सफलता चाहता है, उसे विशेष बलिदान करना होगा।

६. स्वप्न और सत्य

यदि विचार कर के देखा जाए तो अब तक विज्ञान, कला और बौद्धिक जगत् में जितनी उन्नति हुई है, उस सबका श्रेय स्वप्नद्रष्टा लोगों को ही है। जैसे यह दृश्य, स्थूल जगत् अदृश्य जगत् पर आश्रित है, उसी प्रकार लोगों को उनके पापों, कष्टों और बुरे कामों में उन स्वप्नदर्शी लोगों के सुन्दर स्वप्नों और विचारों से सहारा मिलता है। मानव जाति इन स्वप्नद्रष्टाओं को कभी नहीं भूल सकती और न ही उनके आदर्शों को भूल सकती है। उन आदर्शों में ही उसका जीवन है। इन स्वप्नों को वह एक न एक दिन अवश्य पूरा होते देखेगी।

मूर्तिकार, चित्रकार, कवि और गायक, योगी और महर्षि ही संसार और स्वर्ग के स्रष्टा हैं। उन्हीं के कारण यह संसार आज सुन्दर और निवास के योग्य

बना है। वे न होते तो यह संसार नरक के समान दुखदायी होता।

जो मनुष्य अपने हृदय में एक आदर्श, एक सुन्दर सपना संजोये रहता है, वह एक न एक दिन उसे अवश्य ही पूरा होते देखता है। कोलम्बस एक नई दुनिया का स्वप्न देख रहा था, और वह नई दुनिया उसने एक दिन खोज ही निकाली। भगवान् बुद्ध ने दुःख, कष्ट और मौत पर विजय पाने का स्वप्न देखा था, और एक दिन वह स्वप्न पूरा हुआ।

हृदय में स्वप्न और आदर्श पालते रहें। हृदय में गूंजने वाले अमर संगीत को, मन में उठने वाली भाव-तरंगों को और सद्विचारों को प्रेमपूर्वक धारण करें; क्योंकि इन्हीं से आनन्द का साम्राज्य और स्वर्गीय सुख की सृष्टि होगी, और यदि आप इन सुन्दर विचारों से पूर्ण रहे तो ये ही अन्त में आपके संसार का निर्माण करेंगे।

चाहना ही प्राप्त करना है। उच्च मनोकामना ही सफलता है। जिस कार्य के लिए यत्न और अभ्यास किया जाएगा; उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। 'जो माँगेगा उसे मिलेगा, जो खटखटाएगा, उसके लिए द्वार खोला जाएगा। और जो खोजेगा, वह

पाएगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यह असम्भव है कि मनुष्य की बुरी इच्छाएँ तो पूरी हो जाएँ पर उसकी उच्च आकांक्षाएँ सदा अधूरी रहें। यह बात नियम के विरुद्ध है। ऐसा नहीं हो सकता। ऊँचे और अच्छे स्वप्न देखिए। जैसे स्वप्न देखेंगे, वैसे ही एक दिन बनेंगे भी। आपके स्वप्न ही इस बात के सूचक हैं कि आखिर आप क्या बनने वाले हैं। आपने अपने जीवन का जो आदर्श निर्धारित किया है, वह इस बात को प्रकट करता है कि जीवन में आप क्या कुछ कर पाएंगे।

बाद में मिली बड़ी से बड़ी विजय या सफलता भी, प्रारम्भ में, अपने बीज रूप में, एक स्वप्न-मात्र थी। आज विशाल दीखने वाला वट-वृक्ष किसी समय अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अत्यन्त छोटा बीज मात्र था। आकाश में विचरण करने वाला पक्षी पहले अण्डे में स्थित था, और आत्मा के उच्चतम स्वप्नों के रूप में विश्वात्मा का प्रतिनिधि देवदूत विद्यमान था। स्वप्न ही उन कार्यों और अवस्थाओं के बीज हैं, जो आगे चलकर मूर्त होती हैं।

सम्भव है आपकी बाहरी परिस्थितियाँ आपकी इच्छा के अनुकूल न हों। किन्तु यदि आप अपना

लक्ष्य चुन लें और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दें तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनमें परिवर्तन होगा । भीतर प्रगति करते हुए मनुष्य की बाहरी परिस्थितियां भी प्रगति की ओर बढ़े बिना नहीं रह सकतीं । एक निर्धन और अत्यधिक परिश्रम से श्रान्त युवक है। उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं, पर उसे कई घण्टे कारखाने में काम करना पड़ता है। वह बचपन में कुछ भी पढ़-लिख नहीं सका है और उसका आचार-व्यवहार भी सभ्य-सुसंस्कृत नहीं है । पर वह ऊँचे-ऊँचे स्वप्न देखता है, अपने जीवन के सम्बन्ध में और जगत् के सम्बन्ध में । वह आदर्श जीवन की रूपरेखा अपने मन में बनाता है। स्वतंत्रता और मानव-मानव के बीच समता के विचार उसके मन पर अधिकार जमा लेते हैं । यह भीतर की हलचल उसे कार्य की ओर प्रेरित करती है। वह अपना बचा हुआ समय, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो, अपनी भीतरी शक्ति और कार्य-क्षमता को बढ़ाने में लगाता है । परिणामस्वरूप उसके जीवन में बहुत बड़ी क्रांति होती है। अब वह कारखाना उसे घेर कर नहीं रख सकता । क्योंकि उसने अपनी सीमाओं को बढ़ा लिया है। वह उसे

उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे फटे-पुराने कपड़े को लोग छोड़ देते हैं। वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में रहता है (और ऐसे लोगों को उपयुक्त अवसर मिल ही जाता है) और एक दिन उस कारखाने को छोड़ देता है । कुछ ही वर्षों बाद वह युवक अपनी विकसित शक्तियों के साथ दिखाई देता है । अब वह बड़ा आदमी बन गया है । उसने अपनी मानसिक शक्तियों पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया है और यही कारण है कि अब वह सम्मान के पद पर पहुँच गया है । बड़ी-बड़ी सम्भावनाओं के द्वार उसके लिए खुल गए हैं। जब वह बोलता है तो लोग उसके मुंह की ओर देखते हैं। युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब उसकी बातों को ध्यान पूर्वक सुनते हैं, और उसके बताए उपायों द्वारा चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। जैसे सूर्य सब ग्रहों के बीच चमकता है, वैसे ही वह व्यक्ति चमकता है; और जैसे सूर्य के चारों ओर अनेक ग्रह चक्कर काटा करते हैं, वैसे ही लोग उसके चारों ओर घूमा करते हैं। वह दूसरों को चमकाने की वैसी ही शक्ति रखता है, जैसे सूर्य अपनी शक्ति से चन्द्रमा को चमकाता है । उसने स्वप्न देखा था जो पूरा हो गया है। स्वप्न अब सत्य में बदल चुका है ।

ऐ नवयुवक पाठको ! आप भी अपने हृदय के स्वप्न को अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखोगे—भले ही वह अच्छा हो या बुरा, या दोनों का सम्मिलित रूप । आप अपने मन में जिस स्वप्न को संजोओगे, उसी की ओर सदा खिंचोगे । आप चाहे कैसे ही वातावरण और परिस्थितियों में हों, अपने आदर्श, स्वप्न या विचार के साथ उठोगे और गिरोगे। तुम्हारी इच्छा जितनी तुच्छ और छोटी होगी, तुम उतने ही छोटे और नीच बनोगे । तुम्हारी आकांक्षाएं जितनी ऊँची और बड़ी होंगी, तुम उतने ही ऊँचे उठोगे और बड़े बनोगे । एक विद्वान् ने कहा है—"वे छोटे-छोटे नाले ही होते हैं, जो थोड़े-से बरसात के पानी से भरकर अपने कूल-किनारों को तोड़ने लगते हैं । चूहों के हाथ, ज़रा-सी चीज़ मिल जाने पर भर जाते हैं । छोटे मन का आदमी भी छोटी-छोटी चीज़ों से सन्तुष्ट हो जाता है ।"

जनतंत्र के इस युग में इस बात की पूरी-पूरी सम्भावना है कि जो आदमी आज बोझा ढोने वाले मज़दूर का काम कर रहा है, वह कल को राष्ट्रपति के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हो । नर से नारायण और भिखारी से भगवान् बन जाने की सम्भावनाएँ

हमारे इस युग में बहुत बढ़ गई हैं। आज रोटी के एक सूखे टुकड़े के लिए गली-गली में भटकने वाला आदमी कल लाखों का अन्नदाता बन सकता है। मानव में अपरिमित सम्भावनाएँ हैं। भगवान् बुद्ध, ईसा और महात्मा गांधी के जीवन हमारे सामने हैं। इन महात्माओं ने न केवल अपने को बहुत ऊँचा उठा लिया, अपितु सारे संसार के लिए मार्ग-दर्शक का काम भी किया।

जो विचारहीन, अज्ञानी और आलसी हैं, वे वस्तुओं के वास्तविक रूप को न देखकर केवल बाहरी परिणामों को देखते हैं और भाग्य और संयोग को सर्वोपरि मानने लगते हैं। किसी पुरुषार्थी आदमी को धन कमाते और धनवान बनते देखकर वे कहा करते हैं—यह कैसा भाग्यशाली है, मिट्टी को हाथ लगाता है तो वह भी सोना बन जाती है। किसी के ऊँचे आचरण और प्रभाव को देख कर वे कहते हैं कि 'देखो, ईश्वर उस पर कैसा मेहरबान है !' वे उन कठिन परीक्षाओं, असफलताओं और संघर्षों को नहीं देखते, जिनमें से पार होकर वह यहाँ तक पहुँचा है। उन्हें बलिदानों और अथक परिश्रम पर विश्वास नहीं, जो अपना स्वप्न सिद्ध करने में इन सफल पुरुषों ने किया

था। वे नहीं जानते कि इनके मार्ग में कितनी रुकावटें आईं और इन्होंने कैसी वीरता के साथ उनको दूर किया। वे तो केवल उनकी वर्तमान दशा को देखते हैं, जिसमें उन्हें केवल उनका सुख, सामर्थ्य, समृद्धि और शांति दिखाई देती है, जिसे देखकर वे उनके भाग्य को सराहते हैं।

सारे मानवीय कार्य-व्यवहार में पहले प्रयत्न और बाद में उनके परिणामस्वरूप फल की प्राप्ति होती है। जैसा और जितना प्रयत्न होता है, वैसा और उतना ही फल भी मिलता है। प्रयत्न से फल का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रतिभा, शक्ति, सम्पत्ति और बुद्धि आदि सभी आध्यात्मिक और भौतिक वस्तुएँ प्रयत्नों के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं। वे मूर्त्त विचार, प्राप्त आदर्श या सिद्ध स्वप्न हैं। अभिप्राय यह है कि जिस स्वप्न की छाया तुम्हारे मन और मस्तिष्क पर पड़ेगी, जिस आदर्श की ओर तुम्हारे कदम उठेंगे, उसी से तुम्हारे जीवन की सृष्टि होगी और वैसे ही बन जाओगे।

७. शान्ति

शान्ति ज्ञान का एक सुन्दर रत्न है। यह चिरकाल तक आत्म-संयम, अभ्यास और प्रयत्न से प्राप्त होती है। किसी व्यक्ति का शान्त-चित्त होना इस बात का प्रमाण है कि इस व्यक्ति का अनुभव और अभ्यास परिपक्वावस्था को प्राप्त हो गया है तथा उसे आध्यात्मिक विचार के नियमों और गतिविधि का पूर्ण ज्ञान हो गया है।

प्रत्येक मनुष्य उसी मात्रा में शान्ति प्राप्त करता है, जिस मात्रा में वह अपने को विचारों द्वारा विकसित समझता है। ऐसा ज्ञान होने पर वह दूसरों को भी अपने समान समझता है। यह अवस्था सम्यक् ज्ञान की अवस्था कहलाती है। सम्यक् ज्ञान होने पर कार्य और कारण का सम्बन्ध अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है और तब वह चीख़ना-चिल्लाना, शोक

और चिन्ता करना छोड़ देता है एवं स्थिर, शान्त और उदार बन जाता है।

शान्त-चित्त व्यक्ति अपने आप पर शासन करना जान जाता है और फिर दूसरों के साथ भी उचित व्यवहार करता है। बदले में दूसरे लोग भी उसकी आध्यात्मिक शक्ति की प्रशंसा करते हैं और इस बात की आवश्यकता अनुभव करते हैं कि उससे कुछ सीखें, उस पर श्रद्धा और विश्वास रखें। मनुष्य जितना अधिक शान्त-प्रकृति होता जाता है, उतनी ही अधिक सफलता भी उसे प्राप्त होती है, उसका प्रभाव और सम्मान भी उतना ही बढ़ता है। एक छोटा-सा दूकानदार भी यदि आत्म-संयम और संकल्प में दृढ़ होता जाएगा तो उसे अपने कार्य में उन्नति होती दिखाई देगी। लोग ऐसे ही आदमियों से सम्बन्ध रखना अच्छा समझते हैं, जिनका स्वभाव दृढ़ और 'सम' रहता है और जो सबके साथ नम्रता का व्यवहार करते हैं।

दूरदर्शी और शान्त स्वभाव वाले मनुष्य के साथ सभी लोग प्रेम और सम्मान का व्यवहार करते हैं। वह मरुभूमि में हरीतिमा की भान्ति होता है, तूफान और आंधी में आश्रय लेने योग्य स्थान है। ऐसा कौन

है जो शान्त, दूरदर्शी और सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्ति से प्रेम न करे। ऐसे शान्त-चित्त पुरुषों को ही गीता में भगवान् कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ की उपाधि दी है। सुख और दुःख में, मान और अपमान में, शीत और गर्मी में, हर्ष और शोक में जो विचलित नहीं होता, वही स्थितप्रज्ञ अथवा शान्त प्रकृति का पुरुष है। चरित्र का यह विकास, जो शान्त स्वभाव के रूप में प्रकट होता है, अमूल्य निधि है। इससे बढ़कर कोई दूसरा आनन्द नहीं है। यही जीवन का फूलना और आत्मा का फलना है। शान्त जीवन वह जीवन है जो सचाई के महा-सागर की निचली तह में, लहरों से इतना नीचे रहता कि वहाँ की शान्ति कभी भंग नहीं होती। वहाँ तक तूफानों की पहुँच नहीं होती। क्या ऐसे जीवन की तुलना में कोई सांसारिक लाभ टिक सकता है ! कभी नहीं।

ऐसे कितने ही लोग हैं, जो अपने क्रोधी स्वभाव के कारण प्रकृति की अमूल्य देन शान्ति और नम्रता को नष्ट करके अपने जीवन को विषैला बना लेते हैं। अपना मानसिक सन्तुलन खोकर लोगों को अपना शत्रु बना लेते हैं। खेद की बात यह है कि पूर्ण मानसिक सन्तुलन वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं है।

निःसन्देह आज का मानव बेरोक-टोक विषय-वासनाओं की लहरों में बह रहा है, वह गहरे दुःख से क्षुब्ध और चिन्ता और सन्ताप द्वारा उद्वेलित हो रहा है। इसका कारण यह है कि हमारा विश्वास उच्च आध्यात्मिक सत्ता से उठ गया है। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है और अपने विचारों को पवित्र बना लिया है, वही कुवासनाओं के भूचालों और आँधियों पर विजय प्राप्त कर सकता है, अर्थात् क्रोध, लोभ और मोह को दबा सकता है। ये तीनों नरक के द्वार हैं, ऐसा गीता में लिखा है। जब तक इनको वश में नहीं किया जाता, शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

ऐ क्रोध, लोभ और मोह की आँधी में फंसी आत्माओ! चाहे तुम कहीं भी हो और चाहे कैसी भी स्थिति में हो, इस बात को कभी मत भूलो कि जीवन के महासागर में सुख और शान्ति के द्वीप तुम्हारा स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा में खड़े मुस्करा रहे हैं। तुम्हारा शुभ आदर्श का शान्त किनारा तुम्हारे शुभागमन की चिर-अभिलषित कामना लिए प्रतीक्षा कर रहा है। तुम अपनी विचार-रूपी नौका की डांड को दृढ़ता से पकड़े रखो, अर्थात् अपने मन को इधर-उधर

भटकने न दो। तुम्हारी जीवन-नौका के भीतर शक्तिशाली खेवैया सो रहा है, उसे जगाओ और इस नाव के डांड उसके हाथों में थमा दो। फिर देखो कि वह तूफान में से इस नौका को क्षण भर में कैसे बाहर निकाल ले जाता है ! आत्म-संयम बल है, सद्विचार ही प्रभुत्व-शक्ति है। शान्ति में शक्ति है। अपने हृदय में कहो——

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!